The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

57. भारतीय ज्ञान परंपरा

चंदन कुमार
सहायक प्राध्यापक
एस.पी.टी.टी.सी. वीरसिंहपुर, समस्तीपुर (बिहार)
मो. 9386216741

शोध-सार

भारतीय ज्ञान-परंपरा की जिन शक्तियों के आलोक में भारत विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित रहा और स्वर्ण-खग-संज्ञा से प्रख्यात हुआ, उस ज्ञान-परंपरा की रक्षा और विस्तार अपरिहार्य है। 'भारतीय ज्ञान-परंपरा' का अर्थ है-पीढ़ियों से चली आ रही बुद्धिमत्ता का सम्मान और संरक्षण ; साथ ही परंपरा के साथ गतिशील जुड़ाव को प्रोत्साहित करना। भारतीय ज्ञान-परंपरा से ही संबद्ध हैं-आर्यभट्ट का शून्य-ज्ञान, चरक और सुश्रुत का आयुर्वेद-संधान।

मुख्य शब्द- स्वर्ण-खग-संज्ञा, बुद्धिमत्ता, ज्ञान

अद्वितीय ज्ञान और आत्मिक प्रज्ञा का प्रतीक है, भारतीय ज्ञान-परंपरा, जिसमें लौकिक-पारलौकिक, कर्म-धर्म तथा भोग एवं मोक्ष का अद्भुत समन्वय हुआ है। प्राचीन भारत में ज्ञान की शाखाएँ (वेदांग) और अनुशासन शिक्षा में शामिल थे। इससे सर्वप्रथम विदयार्थी मानवतावादी संस्कारी होते थे और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासित रहते थे। इसीलिए भारतीय ज्ञान को सर्वोत्तम धन भी माना जाता था। प्राचीन ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरुकुलों के माध्यम से पारित किया गया है। इसी ज्ञान-गरिमा से विभूषित भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काशी एवं मिथिला इत्यादि विश्व विख्यात शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे। इन ज्ञान-प्रकाशित विदया-केन्द्रों में देशी-विदेशी विदयार्थी आते थे, और सर्वप्रथम मानवतावादी संस्कार और आत्मिकानुशासन का ही पाठ पढ़ते थे, तत्पश्चात पूर्ण मानवता-युक्त विदया से विभूषित होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। यानी प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपरा प्रत्येक विदयार्थी में जीवन-यापन-कार्य-कुशलता को भी भरती थी, जिसके कारण एक भी विदयार्थी बेरोजगार नहीं होते थे। इसलिए भी भारतीय ज्ञान-परंपरा अपरिहार्य प्रतीत होता है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल है –'अथर्ववेद'। कहने के लिए सारस्वत जन 'वेद' कह देते हैं, लेकिन भारतीय ज्ञान-परंपरा का जन्म 'अथर्ववेद' के गर्भ से ही हुआ है। इसी अथर्ववेद से निकला-आयुर्वेद और आयुर्वेद से ही निकली-समस्त चिकित्सा प्रणाली। तब आया- मन, आत्मा और मस्तिष्क की दिव्य औषधि के रूप में संस्कृत साहित्य, जो भारतीय ज्ञान-परंपरा को आज भी प्रकाशित कर रहा है।

स्पष्ट हो चूका है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा के आधार वेद, पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण और अरण्यक आदि आर्ष-ग्रंथ रहे हैं। वेदों में विभिन्न विषयों पर ज्ञान का विस्तार से वर्णन किया गया है। जैसे- सनातन धर्म, संस्कृति, ज्योतिष, विज्ञान, गणित, खगोल, आयुर्वेद इत्यादि।

वेदों के उपरांत उपनिषधों ने आत्मा के ज्ञान को प्रमुखता दी, जिससे भारतीय दर्शन की स्थापना हुई। गम्भीर अनुसंधानोपरांत ही स्पष्ट होता है कि संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा तक ज्ञान-परंपरा की जो गंगा बही, वही ब्रज, अवधी मैथिली सहित हिंदी भाषा की घाटियों में भी बहने लगी।

The Asian Thinker

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

हिंदी साहित्य का कोई भी काल भारतीय ज्ञान-परंपरा-प्रकाश से अछूता नहीं है। आदिकाल के सिद्ध हों या नाथ, दोनों ने लौकिक-अलौकिक ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण किया है। सिद्धाचार्थ सरहपाद ने सपष्ट किया है-

"पण्डिअ सअल सत्थ बक्खाणइ।
देहिह बुद्ध बसंत न जाणइ।।"

यही भारतीय ज्ञान-परंपरा का मुख्य प्रकाश है कि सब कुछ मनुष्य के तन के अंदर ही है। इधर-उधर का भटकाव व्यर्थ है।

हिंदी साहित्य के मध्यकाल के अंतर्गत भक्तिकाल तो भव्य है, इसीलिए आंग्ल साहित्यकार जॉर्ज ए-ग्रियर्सन ने इसे स्वर्णकाल कहा, जिसे किसी भी हिंदी के साहित्यकार ने अस्वीकार नहीं किया, जबकि उनके काल-विभाजन को स्वीकार नहीं किया गया। स्पष्ट हो चूका है कि भक्तिकाल भारतीय ज्ञान-परंपरा के प्रकाश से पुर्णतः प्रकाशित है। मध्यकालीन-प्रमुख संत कवियों में महाकवि राम-भक्त तुलसीदास, कृष्णभक्त महाकवि सूरदास, कृष्ण-प्रेयसी आराधिका मीरांबाई, निर्गुण संत कवि कबीर, रविदास, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, वल्लभाचार्य नानक इत्यादि भारतीय ज्ञान-परंपरा-पथ के ही श्रेष्ठतम पथिक बने रहे। तुलसीदास ने सगुण-निर्गुण-विभेद को अंगीकार नहीं किया। उन्होंने लिखा- **"सगुनहि-अगुनहि नहि कुछ भेदा।**

गाबहीं मुनि पुरान बुध बेदा।।"

भक्तिकालीन निर्गुणवादी संत कबीर तो ईश्वर से भी श्रेष्ठ गुरु को ही मानते हैं। यथा-

"गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काको लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपणौ, गोबिंद दियो बताय।।"

सिखधर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव ने तो डंके की चोट पर कहा कि 'एक्कइ नूर तें सब जग उपज्या' अर्थात् ईश्वर एक है।

रीतिकालीन कवि बिहारी हों या भूषण अथवा मतिराम, तकरीबन सभी ने भारतीय ज्ञान-परंपरा के प्रकाश को आगे बढ़ाकर अमरत्व को प्राप्त किया।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भी प्रकारांतर से भारतीय ज्ञान-परंपरा का ही प्रकाश विकीर्ण कर रहा है। आधुनिक काल के रचनाकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पंत, राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, अयोध्या प्रसाद सिंह 'हरिऔध', जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रा नंदन पंत, रामधारी सिंह 'दिनकर', सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' इत्यादि कलमकशों ने भारतीय ज्ञान-परंपरा के प्रकाश को ही विकीर्ण किया है।

अस्तुः हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान-परंपरा के प्रकाशक रचनाकारों की रचनाओं के माध्यम से भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान से विदयार्थियों को संयुक्त कर उन्हें आदर्श व्यक्ति बनाया जा सकता है।

परिचय :-

भारतीय ज्ञान परंपरा का, रहे अक्षुण्ण प्रवाह।(स्व-रचित)
तभी खुलेगी मानवता की, बंद हो चुकी राह।।

भारतीय ज्ञान-परंपरा की जिन शक्तियों के साए में भारत कभी विश्वगुरु के पद पर आसीन हुआ और स्वर्ण-खग के नाम से प्रख्यात हुआ, उस ज्ञान-परंपरा की रक्षा और विस्तार अपरिहार्य प्रतीत हो रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

सातत्य का अर्थ है- पीढ़ियों से चली आ रही बुद्धिमत्ता का सम्मान और संरक्षण, साथ ही परंपरा के साथ गतिशील जुड़ाव को प्रोत्साहित करना।

अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है- भारतीय ज्ञान-परंपरा, जिसमें लौकिक-पारलौकिक, कर्म-धर्म तथा मोक्ष एवं त्याग का अद्भुत समन्वय हुआ है। प्राचीन भारत में ज्ञान की शाखाएं (वेदांग) और अनुशासन शामिल थे। वस्तुतः भारतीय ज्ञान को ही असली धन माना जाता है। प्राचीन ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरुकुलों के रूप में पारित किया गया है। इसी ज्ञान-गरिमा से विभूषित भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी एवं काशी आदि विश्व विख्यात शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे। इन ज्ञान-प्रकाशित विदया-केन्द्रों में देशी-विदेशी विदयार्थी आते थे और सर्वप्रथम आत्मिकानुशासन का ही पाठ पढ़ते थे। तत्पश्चात पूर्ण मानवता-युक्त विदया से विभूषित होकर गृहस्थाश्रमी बनते थे। विदया-प्राप्ति के उपरांत ही जीवन-यापन-कर्म प्राप्त करते थे। यानी प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपरा प्रत्येक विदयार्थी में जीवन-यापन-कार्य-कुशलता को भी भरती थी, जिसके कारण आज के युवक-युवतियों की तरह बेरोजगार नहीं होते थे। इसीलिए भी भारतीय ज्ञान परंपरा का सातत्य अपरिहार्य है।

भारतीय ज्ञान-प्राप्ति का मूलाधार हैं- वेद, जिनमें ऋग्वेद में स्पष्ट किया गया है कि एक ही ईश्वर को मनुष्य विविध नामों से पुकारते हैं- "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ती"। इतना ही नहीं, कहा यह भी गया है- **"संगच्छधवं संवदध्वम्"** अर्थात् मिलकर चलो और मिलकर बोलो। राष्ट्रीय और वैश्विक एकता के मूल में यही भावना जब रहती है, तभी अमन का आलोक विकीर्ण होता है। इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा गया है कि हम कानों से सदा भद्र-मंगलकारी वचन ही सुनें। वह व्यापक प्रभु सभी प्रजागण में ओत-प्रोत हैं। यथा– **"भद्र कर्णेभिः श्रृणुयाम्"**।

इस प्रकार से ऐसा प्रतीत होता है कि वेद-वेदांगों की ज्ञान-परंपरा में पहले मनुष्य का निर्माण किया जाता था- मानवत्व को विद्यार्थियों के रोम-रोम में भरकर, जो आज नहीं हो रहा है। आजकल मात्र डॉक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक आदि, बनाया जा रहा है, जो मनुष्यता के अभाव में मानवता से भी खिलवाड़ करने लगते हैं और अंधास्था एवं अंधविश्वास को बढ़ाते रहते हैं। हिन्दू-अषि ग्रंथों की तरह ही गुरु नानक देव भी कहते हैं कि 'एक्के नूर तें सब जग उपज्या'। अर्थात एक ही नूर से सम्पूर्ण जग विस्तारित हुआ है। इसलिए सभी धर्मों का मान बराबर है। किसी धर्म को कोई धर्मावलम्बी हीन नहीं कहे और न ही किसी धर्म के विरोध दंगा आदि करे।

इसी प्रकार 'हितोपदेश' एवं 'पंचतंत्र' आदि सद्-ग्रंथों में जो सार भरा है, उसे बढाना अपरिहार्य लगता है। 'हितोपदेश' और 'पंचतंत्र' में पशु-पक्षियों सहित मनुष्य के माध्यम से भी जिस ज्ञान की सुरभि विकीर्ण की गयी है,उसका संरक्षण भी जरूरी है। 'हितोपदेश' में डंके की चोट पर कहा गया है कि जो विदयावान नहीं होते हैं, पढ़ते-लिखते नहीं हैं, वे बिना सींग और पूँछ के पशु ही लेते हैं और वे माता-पिता शत्रु होते हैं, जो संततियों को पढ़ाते नहीं हैं। यथा –

"माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः।[1]
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्योबको यथा॥

वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ विदयार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। इसी परंपरा में ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म एवं भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय था। प्राचीन भारतवर्ष में गुरु-शिष्य-संबंध के अंतराल में ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरुकुलों में पारित किया जाता था। इन्हीं आर्ष-ज्ञान के बल पर भारत ने ही विश्व को जैनधर्म, बुद्धधर्म और सिख-धर्म को प्रदान किया।

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

यही कारण है कि भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा का केन्द्रीय स्तम्भ माना गया है। विश्वविदयालय अनुदान आयोग ने भी नई पीढ़ी को भारतीय ज्ञान-परंपरा से जोड़ने के लिए कई पहल की है। भारतीय शिक्षा मंत्रालय भी स्वदेशी भारतीय ज्ञान-परंपरा को बढावा दे रहा है। विश्वविदयालय अनुदान आयोग के दिशा-निर्देशानुसार, स्नातक एवं परास्नातक स्तर पर विदयार्थियों के सम्पूर्ण उपलब्धि का पाँच प्रतिशत भारतीय ज्ञान-परंपरा के पाठ्यक्रमों से होना चाहिए। भारतीय ज्ञान-परंपरा के अधीन कुछ पारंपरिक भारतीय ज्ञान के क्षेत्रों में अनुसंधान करने की भी पहल कृषि एवं वास्तुशास्त्र इत्यादि क्षेत्रों में की गई है।

वस्तुतः प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा क्रम का क्षेत्र अत्यंत व्यापक था। शिक्षा में विविध कलाओं की शिक्षा भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी। कलाओं के संबंध में वेद-पुराण, रामायण-महाभारत आदि ग्रथों में ज्ञातव्य साम्रगियाँ भरी हुई हैं। गुरु शुक्राचार्य के 'नीतिशास्त्र' में कहा गया है कि कलाएँ अनंत हैं; उनमें चौंसठ कलाएँ मुख्य हैं। इन कलाओं में प्रवीणता प्राप्ति-उपरांत ही सच्ची मनुष्यता की प्राप्ति होती थी। यही कारण है कि ऐसी विदयाओं का सातत्य कायम रहे।

प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपरा और आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का हिस्सा बन जाएगा, तभी भारतीय ज्ञान-विज्ञान पूर्ण मनुष्य-निर्माण का हिस्सा बन सकता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि-

होगा पारंपरिक ज्ञान से संभव जग कल्याण।(स्व-रचित)
भारतीय पारंपरिक ज्ञान ही देता आत्मिक ज्ञान॥

साहित्यिक पुनर्वलोकन :-

भारतीय ज्ञान-परंपरा का, सातत्य-सरित-धार।(स्व-रचित)
अविरल जारी आदिकाल से, हो भू-पर साकार॥

आदिकालीन परंपराओं में भारतीय ज्ञान-परंपरा ही वह अडिग प्रकाश-स्तम्भ है, जिससे प्रकाशित व्यक्तित्व ही आदिकालीन सभ्यता-संस्कृति का संरक्षण और संवर्द्धन करते हुए भारत को विश्वगुरु-पद पर पुनः प्रतिष्ठित करा सकता है। यही कारण है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से भारत सरकार ने भारतीय ज्ञान-परंपरा से भी अत्याधुनिक शिक्षा को प्रकाशित करने का जमीनी निर्णय लिया है, जो सराहनीय है, क्योंकि आत्मिक ज्ञान के अभाव में ही विज्ञान भी विभ्रमित हो जाता है, मनुष्य मनुष्य को हीन समझता है, जिसके कारण जातीय उन्माद और धार्मिक दंगे भी होते रहते हैं।

आदिकालीन शिक्षा, जो सनातन धर्माधारित थी, वह विदया प्रधान थी। वस्तुतः विदया ही मनुष्य को ज्ञानी बनाती थी, सात्विकता-पथ का पथिक बनाती थी और दानवता को विदूर कर मानवता का मूल-भाव मनुष्य के हृदय में जगाती थी। तभी तो नारायण पंडित ने लिखा है-

"विदया ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।[1]
पात्रत्वात् धन्माप्नोति धनाद् धर्मः ततः सुखम्॥"

अर्थात् विदया से ही विनम्रता आती है, विनम्रता से ही पात्रता की प्राप्ति होती है। पात्रता से धन और समृद्धि की प्राप्ति होती है, तभी सही आचरण से सुख-संतोष पाया जाता है।

'विष्णुपुराण' में भी विदया को ही विमुक्ति का मूल बताया गया है –

"तत्कर्म यन्न बंधाय सा विदया या विमुक्तये।[2]

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

आयासाया परम् कर्म विदयान्या शिल्पनैपुणम् ।।''

अर्थात् कर्म वही है, जो बंधन में नहीं बाँधे, विदया वही है, जो विमुक्त करे। अन्य सभी कर्म केवल निरर्थक क्रिया एवं अन्य सभी अध्ययन केवल कारीगिरी मात्र है।

अठारह पुराणों में महर्षि पराशर प्रणित 'विष्णु-पुराण' अत्यंत प्राचीन अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसके प्रतिपादय भगवान विष्णु हैं, जो सृष्टि के आदिकारण, नित्य, अक्षय, अव्यय और एक रस हैं। इसमें मुख रूप से लीलापुरुषोत्तम श्री कृष्ण-चरित्र-चित्रण है। संक्षेप में रामकथा का उल्लेख भी प्राप्त होता है। कुल तईस हजार श्लोकों के अंतराल में मनुष्य के सोने-जागने सहित नित्यक्रिया को भी रेखांकित किया गया है। सफल जीवन जीने के लिए ब्रहम-मुहूर्त में जागना अपरिहार्य बताया गया है । इसके अलावा ध्यान-योग-साधना सहित व्यायाम करना, नकारात्मक ऊर्जा से दूर रहना, गरीब एवं लाचारों की सेवा करना, चरित्रहीनों से स्वयं को दूर रखना तथा निर्वस्त्र स्नान नहीं करने सहित अधिक काल तक या सुबह के समय शारीरिक संबंध बनाने का निषेध भी किया गया है। इसके अलावा दान करने का भी निर्देश दिया गया है। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी मनुष्य-निर्माण की ही प्रक्रिया का प्रकाश विकीर्ण किया गया है। इसका पूर्ण अभाव आज की शिक्षा-पद्धति में है, जिससे शिक्षित भी अशिक्षितों की तरह व्यवहार करते रहते हैं। पढ़लिखकर, ऊँची शिक्षा प्राप्त कर भी मानव दानवी-प्रवृत्ति को त्याग नहीं पाता है। चिकित्सक, अभियंता, प्राध्यापक, प्रवचनकार आदि उच्च स्तरीय पदों को सुशोभित करने वाले भी मुकम्मल मनुष्य नहीं बन पाते हैं। न तो उनमें धरती-सा धैर्य, आकाश-सी गम्भीरता, पानी-सी तरलता और शीतलता ही आ पाती है और ना ही दरिया, पवन और निर्झरिणी-सम समरसता की भावना आ पाती है। इसके कारण भी घर-परिवार, समाज और हमारा देश कलंकित होता रहता है।

वस्तुतः मनुष्यता विहीन राजे-महाराजाओं के कारण ही विदेशी आक्रान्ताओं ने जब भारतवर्ष को पदाक्रांत किया, तब सबसे पहले उन्होंने भारती को ही शिक्षा से हटाने का काम प्रारंभ कर दिया। भारतीय ज्ञानाधारित शैक्षिक परंपरा को ही ध्वस्त करने का कुकृत प्रारंभ कर दिया गया, जिसके कारण शिक्षित मानव भी ज्ञान-शून्य होने लगे और विदेशियों की भरमार होने लगी। शक, हूण, यवन, मुगल, फ्रांसीसी और अँग्रेज आदि भारत आए। कुछ तो भारत को लूट कर चले गए और कुछ अपना राजपाट चलाने लगे। इनमें मुस्लिम शहंशाहों और अँग्रेज अधिकारियों ने भारतीय पारंपरिक ज्ञान-धाराओं को ही बंद कर दिया, जिसके विश्वगुरु के पद पर आसीन भारत गुलामी का दंश भोगने लगा। तभी तो राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में संकलित 'अर्थ' शीर्षक कविता में लिखा-

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी ?[3]
आओ, विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी ।।

1912-13 ई. में लिखी गयी और 1914 ई. में प्रकाशित इस 'भारत-भारती' की प्रासंगिता आज भी यथावत बनी हुई है। राष्ट्रकवि गुप्त जी की जब हम चिंतन की चाँदनी विकीर्ण करते हैं, तब उत्तर मिलता है कि हम सनातन हैं और विश्वगुरु थे। लेकिन विदेशी आक्रान्ताओं के कारण हम बर्बाद हो गए, लेकिन अब हम एकबार फिर कमर कास चुके हैं कि भारतीय ज्ञान-परंपरा के सातत्य को बढ़ाते रहेंगे, तभी खोए हुए राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः प्राचीन कालीन विदया-प्राप्ति-प्रणाली की निरंतरता को बढ़ाकर ही पूर्ण विकसित भारत का निर्माण कर सकते हैं। 'वेद' और 'पुराण' के ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। इनके अध्ययन, चिंतन-मनन से ही भारतीय शैक्षिक जगत में पुनर्जागरण संभव है।

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

स्मरण रहे कि 14वीं और 16वीं सदी के अंतराल में यूरोप में जो सांस्कृतिक और धार्मिक प्रगति हुई, आन्दोलन तथा युद्ध हुए उन्हें पुनर्जागरण कहा गया था। इसके फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। यह आन्दोलन केवल पुराने ज्ञान के उद्धार तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इस युग में कला, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक नवीन प्रयोग हुए। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 2020 भारतीय पुनर्जागरण काल का ही दयोतक है। इसके माध्यम से चन्द्रगुप्त मौर्य-काल की पुनर्वापसी की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता है, जिसके संदर्भ में चीन के दार्शिनिक यात्री फाह्यान ने लिखा है– सम्राट चन्द्रगुप्त का शासन-काल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल है। यहाँ के नागरिक उच्च चरित्र के धनी हैं। यहाँ तक कि कोई किसी की चोरी नहीं करता है। लोग बाहर जाते समय घरों में ताले नहीं लगाते हैं। यदि कोई स्त्री बेहोशी की अवस्था में चौराहे पर गिर पड़े, तो हवा की भी मजाल नहीं कि उसके वस्त्र हटा सके। सशक्त शासन में देश पुर्णतः सुरक्षित है।

वर्तमान भारत सरकार ने ऐसे ही सशक्त एवं विद्वत भारत-स्थापनार्थ राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 2020 का निर्माण किया है। चूँकि वैदिक-पौराणिक अध्ययन करनेवाले चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का निर्माण वैदिक तत्त्वों के आधार पर ही किया था, जिसने अखंड भारत का निर्माण किया, इसीलिए भारतीय ज्ञान-परंपरा के सातत्य को बनाए रखने का निर्णय लिया गया है।

सातत्य-सिद्धांत की चर्चा करते हुए प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने विश्वकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' प्रणीत गदय-ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में लिखा – "यह मानना तो ठीक है कि आर्थिक उन्नति जीवन और प्रगति का बुनियादी आधार है, लेकिन जिंदगी वहीं खत्म नहीं होती। वह आर्थिक विकास से कहीं ऊँची चीज है। इतिहास के अंदर हम दो सिद्धांतों को काम करते देखते हैं – एक तो सातत्य का सिद्धांत है और दूसरा परिवर्त्तन का। ये दोनों सिद्धांत परस्पर विरोधी लगते हैं, परंतु ये विरोधी नहीं। सातत्य का कुछ अंश लिए रहता है।"[4]

'भारतीय ज्ञान-परंपरा' भी परिवर्त्तन के अंशों को लिए हुए है। भारतीय ज्ञान-परंपरा का जो मूल ग्रंथ 'वेद' है, उसमें भी स्व-प्रकाशनार्थ तत्त्वों की कमी नहीं है। 'ऋग्वेद' डंके की चोट पर 'संगच्छध्वं संवदध्वंम' सूक्त-अंश के माध्यम से जहाँ आत्मिक एकता को बनाए रखने का ज्ञान देता है, 'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्तिमन्ननातुरम्' के प्रकाश में विश्व-ग्राम की परिकल्पना करते हुए सभी प्राणियों के हृष्ट-पुष्ट और निरोग रहने की भी कामना करता है।

ऋग्वेद के 9 वें मंडल, 63 वें सूक्त और 5 वें मंत्र में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का निनाद किया गया है, जिसके सम्पूर्ण मंत्र का अर्थ है – सत्कर्मों में निपुण सज्जनों ! परमैश्वर्यशालियों को बढाते हुए पापियों का नाश करते हुए सम्पूर्ण संसार को आर्य बनाओ। वेद में ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का आत्मिक आलोक भी विकीर्ण हुआ है। इस कारण भी भारतीय ज्ञान-परंपरा की निरंतरता को बनाए रखने की आवश्यकता है।

आज भारतीय कृषि भूमि भी अनुर्वर हो रही है, गर्म हो रही है, कभी इसकी गति धीमी हो रही है, तो कभी तेज, क्योंकि मनुष्यों ने धरती के साथ न्याय नहीं किया। भौतिक सुख-सुविधाओं की खातिर धरती को व्याकुल कर दिया, धरा-संरक्षक हरियाली को ही नष्ट करने लगा, जिसके कारण मौसम-चक्र भी विकृत हो गया। अगर वैदिक ज्ञान को जीवन में उतार लेता, तब आज धरती माता भी उदास नहीं नजर आती। 'अर्थवेद' का पृथ्वी-सूक्ति में स्पष्ट कहा गया है –

'यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।[5]
मा ते मर्मं विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

अर्थात् - 'मा ! मैं तेरे कंद-मूल, फल-औषधि आदि रहा जो खोद;
पुनः शीघ्र उग आए वह भी पाकर तेरा स्नेह समोद ।।
पावन कारिणि जननि ! न तेरे मर्म पर करूँ मैं आघात,
या जिससे तव हृदय व्यथित हो, करूँ न ऐसी कोई बात ।।

ऐसे अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें स्व-जागरण के मंत्र भी हैं। ऐसे ग्रंथों की विदया ही गुरु-आश्रमों के माध्यम से विदयार्थियों को दी जाती रही, जिसके कारण विदयार्थी धीर, वीर, गम्भीर होकर मानवता का कल्याण करते थे। भारत के तक्षशिला, नालंदा,विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काशीएवं मिथिला आदि विश्व-प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे, जहाँ अनेक देशों के विदयार्थी भी ज्ञान-प्राप्तार्थ आते थे।

'भारतीय ज्ञान-परंपरा का अथवर्वेद सुमूल ।(स्व-रचित)
हैं इसी से आयुर्वेद के खिले चिक्तिसा-फूल ।।'

वस्तुतः भारतीय ज्ञान-परंपरा का आविर्भाव अथवर्वेद के गर्भ से ही हुआ है। इसी अथवर्वेद से निकला-आयुर्वेद और आयुर्वेद से निकली-समस्त चिक्तिसा प्रणाली। तब आया- मन और मस्तिष्क की कारगर औषधि के रूप में संस्कृत साहित्य, जो भारतीय ज्ञान-परंपरा को आज भी प्रकाशित कर रहा है।

स्पष्ट हो चूका है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा के आधार वेद, पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण और अरण्यक आदि आर्ष ग्रंथ रहे हैं। वेदों में विभिन्न विषयों पर ज्ञान का विस्तार से वर्णन किया गया है। जैसे– सनातन धर्म, संस्कृति, ज्योतिष, विज्ञान, गणित, खगोल, आयुर्वेद आदि।

वेदों के उपरांत उपनिषदों ने आत्मा के ज्ञान को प्रमुखता दी, जिससे भारतीय दर्शन की स्थापना हुई। गम्भीर अनुसंधान से भी पता चलता है कि संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तक ज्ञान-परंपरा की जो गंगा बही, वही अवधि, ब्रज, मैथिली सहित हिंदी में भी बहने लगी।

हिंदी साहित्य का कोई भी काल नहीं है, जिसमें भारतीय ज्ञान-परंपरा प्रकाश नहीं है। हिंदी साहित्य के आदिकाल में हिंदी के प्रथम रचनाकार के रूप में सिद्ध सरहपाद का उल्लेख किया गया है, उन्होंने भी भारतीय ज्ञान-परंपरा के प्रकाश में ही कहा है –

"जह मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह पवेश।
तहि वह चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश ।।"
पण्डिअ सअल सत्थ बक्खाणइ ।[6]
देहिह बुद्ध बसंत न जाणइ ।।"

यही भारतीय ज्ञान-परंपरा का प्रकाश है कि सब कुछ मानव-तन में ही है। इधर-उधर का भटकाव व्यर्थ है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल के अंतर्गत का भक्तिकाल तो दिव्य है, तभी तो इसे स्वर्णयुग भी कहा गया जाता है। इसमें भारतीय ज्ञान-परंपरा का पूर्ण प्रकाश स्पष्ट होता है। मध्यकालीन प्रमुख संत रचनाकारों में आदि महाकवि महर्षि वाल्मीकि, रामभक्त तुलसीदास, कृष्णभक्त सूरदास, कृष्ण-प्रेयसी मीरांबाई, निर्गुण संत कबीर, रविदास, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, वल्लभाचार्य नानक आदि ने भारतीय ज्ञान-परंपरा-पथ के ही पथिक बने रहे।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने निर्गुण-सगुण-एकाकार ज्ञान के माध्यम से बालकाण्ड में ही स्पष्ट किया है –

"सगुनहि-अगुनहि नहि कुछ भेदा।

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

गाबहीं मुनि पुरान बुध बेदा ।।"
अगुन अरूप अलख अज सोई ।[7]
भगत प्रेम बस सगुण से होई ।।

अर्थात् सगुण-निर्गुण ब्रह्म एक ही है । जो निर्गुण हैं, वहीं भक्त के प्रेम वश सगुण हो जाते हैं । इस कथन के पूर्व मानसकार यह भी स्पष्ट कर देते हैं, कि 'रामचरितमानस' में किन-किन ग्रंथों से ज्ञान-परंपरा का प्रकाश प्राप्त हुआ है । यथा–

"नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोड पि ।
स्वतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-[8]
भाषा निबंध मतिमञ्जुलमात नेति ।।"

अर्थात् अनेक पुराण, वेद और तन्त्रशास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास अपने अंतःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करते हैं ।

भक्तिकालीन निर्गुण संत कवि कबीर साहेब तो ज्ञानपुँज गुरु को ही गोविन्द से भी बड़ा मानते हैं । उन्होंने कहा है–

"गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काको लागूँ पाँय ।[9]
बलिहारी गुरु आपणौ, गोबिंद दियो बताय ।।"

सिख-धर्म-प्रवर्तक गुरु नानक देव ने तो डंके की चोट पर कहा कि 'एक्कइ नूर तें सभ जग उपज्या ।' अर्थात ईश्वर एक है ।

रीतिकालीन कवि बिहारी ने भी नीति का प्रकाश विकीर्ण करते हुए लिखा है–

"कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच ।[10]
नल बल जल ऊँचो चढै, तऊ नीच कौ नीच ।।"

अर्थात् कोई कितना भी प्रयत्न करे किंतु मनुष्य के स्वभाव में अंतर नहीं पड़ता है । नल के बल से पानी ऊपर तो चढ़ जाता है, किंतु फिर भी अपने स्वभाव के अनुसार नीचे ही बहता है ।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भी भारतीय ज्ञान-परंपरा का ही अधिक प्रकाश विकीर्ण कर रहा है । आधुनिक काल के कवियों से संबंधित चर्चा पूर्व के पृष्ठों पर भी हुई हैं, जिसमें कुछ प्रख्यात रचनाकारों के नाम नहीं हैं । ऐसे ही रचनाकारों में लब्धप्रतिष्ठित रचनाकार हैं – सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', जिन्होंने अपनी लम्बी कविता 'पटकथा' में लिखा है–

"देश के इस छोर से उस छोर तक
उसी लोक-चेतना को,
बार-बार टेरता रहा,
जो मुझे दोबारा जी सके,
जो मुझे शांति दे सके और,
मेरे भीतर-बाहर का जहर खुद पी सके ।"[11]

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

यहाँ स्पष्ट किया गया है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा-पुष्प-सुरभि से सुरभित है– लोकचेतना। यही लोकचेतना आकुल हृदय को शांति प्रदान करती है।

इससे स्पष्ट होता है कि आदिकाल से ही भारतीय चिंतन धारा भारतीय ज्ञान-परंपरा-सातत्य के कारण ऐहिकता की अपेक्षा पारमार्थिक तत्वों को ही महत्व देती रही है। समस्त वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि में भारतीय ज्ञानमयी नीति के तत्त्व प्राप्त होते हैं। यही तत्त्व तकरीबन सभी भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं।

प्रदत्त तथ्य का विश्लेषण :-

'मिथिला की सांस्कृतिक चेतना : दशा और दृष्टि' विषयक शोधालेख में विदुषी उषा झा ने लिखा है– "मिथिला का इतिहास वास्तव में दिग्विजय अथवा महान साम्राज्य की स्थापना का इतिहास नहीं अपितु ज्ञान एवं विदया का अक्षुण्ण सांस्कृतिक इतिहास है .....साहित्यिक साधनों में ज्योतीश्वर ठाकुर के 'वर्ण-रत्नाकर' विदयापति की 'कीर्तिपताका' और कई प्राचीन ग्रंथ तथा जैन एवं बौद्ध साहित्य हैं।"[12]

गहरे अनुसंधानों से स्पष्ट यह भी हुआ है कि जब नालंदा एवं विक्रमशिला विश्वविदयालयों को जब दुर्दान्त विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा नष्ट कर दिए गए, उस समय उन विश्वविदयालयों से भागकर बहुत सारे विद्वानों ने मिथिला में ही शरण ली। मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचारों से घबराकर भी अनेक विद्वानों ने मिथिला को ही अपनाया था।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नालंदा, तक्षशिला आदि की बर्बादी के बाद अंतिम विश्वविदयालय मिथिला में ही रहा, लेकिन कालान्तराल में यह भी बर्बाद हो गया। भारतीय ज्ञान-परंपरा जो वैदिक और उपनिषद काल में थी, वह बौद्ध और जैन-काल में भी थी। ऐसा विभिन्न विश्वविदयालयों की स्थापना और शिक्षा-व्यवस्था से स्पष्ट परिलक्षित होता है, लेकिन इसका लोंप विगत 200 से 300 वर्षों में ही हो गया है। इस राष्ट्रीय शैक्षिक रूप-रेखा में इसे भी उचित रूप से प्रकाशित करने की आवश्यकता है।

वस्तुतः भारतीय ज्ञान-परंपरा भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय का एक प्रभाग है, जिसका लक्ष्य स्वदेशी भारतीय ज्ञान को बढ़ावा देना है। यह प्रभाग सोया हुआ था, जिसे वर्तमान केन्द्रीय सरकार ने जगाया। सन् 2020 में लागू की गयी भारत की राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में इस बात पर बल दिया कि सभी भारतीय शिक्षा-संस्थानों में इस नीति को लागू करने की पहल की जाए। 'भारतीय रसायन शास्त्र के लिए दृष्टि 2047' नामक पहल में भी भारतीय ज्ञान-परंपरा को सम्मिलित किया गया है। सन् 2022-23 के बजट में भारतीय ज्ञान-परंपरा के लिए निर्धारित राशि बढ़ाकर 20 करोड़ रुपये कर दी गई है।

विश्वविदयालय अनुदान आयोग के दिशा-निर्देशानुसार स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर विदयार्थियों के सम्पूर्ण क्रेडिट का पाँच प्रतिशत भारतीय ज्ञान-परंपरा से होना चाहिए। सन् 2025 तक विश्वविद्यालय आयोग पन्द्रह लाख शिक्षकों को भारतीय ज्ञान-परंपरा का प्रशिक्षण देगा। आयोग ने एक ऑन लाइन पाठ्यक्रम भी प्रारंभ किया है।

The Asian Thinker

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

भारतीय ज्ञान-परंपरा के अधीन कुछ पारंपरिक भारतीय ज्ञान के क्षेत्रों में अनुसंधान करने की पहल भी की है। जैसे कृषि एवं वास्तुशास्त्र। भारतीय ज्ञान-परंपरा का सातत्य अक्षुण्ण रखने के लिए परंपरा के प्रतिनिष्ठा रखना और उससे जुड़े रहना अपरिहार्य है। ऐसा शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है।

वस्तुतः भारतीय ज्ञान-परंपरा के सातत्य का ज्ञान मात्र एक अकादमिक अन्वेषण से कहीं अधिक है। यह इस समृद्ध बौद्धिक विरासत को पहचानने और अपनाने का आह्वान है। इन विचारों से जुड़कर विदयार्थियों सहित आम पाठकों को भी न केवल भारतीय ज्ञान की गहराई और चौड़ाई की सराहना करने के लिए आमंत्रित किया जाता है, बल्कि समकालीन दुनिया की जटिलता के समझने की प्रेरणा भी मिलती

है। इन तथ्यों के साथ ही 'भारतीय ज्ञान-परंपरा की एक झलक' (लेखक-डॉ.विट्ठल गोरे) पुस्तक की भूमिका में पद्मभूषण प्रो. कपिल कपूर ने लिखा है कि यह ज्ञान को समृद्ध करने के अलावा परिप्रेक्ष्य को व्यापक बनाएगा और भारतीय सभ्यता के प्रति सम्मान और गहरा आत्म-सम्मान पैदा करेगा।

वस्तुतः भारतीय ज्ञान-परंपरा निर्मल औषधि तत्व सम्मिलित वह गंगा है, जिसमें सहस्त्रों स्त्री-पुरुष ऋषि-मुनियों ने स्नान कर स्वयं को धन्य बनाया है। भारतीय ज्ञान-परंपरा-गंगा की गंगोत्री वेद है, जहाँ से गुरु-शिष्य-संबंध का प्रादुर्भाव हुआ है। युगों-युगों से गुरु-शिष्य-परंपरा-पथ पर ही भारतीय ज्ञान की प्राप्ति विदयार्थी करते रहे हैं। इस परंपरा को भी विलुप्त ही देख रहे हैं। इस परंपरा का भी पुनर्जागरण अपरिहार्य है। तभी भारतीय ज्ञान-परंपरा का सातत्य जारी रह सकता है।

निष्कर्ष :--

'भारतीय ज्ञान-परंपरा' अनुसंधान के मुख्य निष्कर्ष के रूप में स्पष्ट होता है कि जिस भारतीय ज्ञान-परंपरा के संस्कारी ध्वजा को वैश्विक क्षितिज पर फहराने का पुनर्प्रयास किया जा रहा है, उसका प्रभाव भारत सहित पूरे विश्व पर पड़ेगा। वैश्विक राजनीति हो या सामाजिकता, सभ्यता हो या संस्कृति, कला-कौशल हो या योग अथवा व्यवहार, सभी का जमीनी आधार है- भारतीय ज्ञान-परंपरा। इसलिए इसके सातत्य का वर्द्धमान रहना अपरिहार्य प्रतीत होता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा से ही भारतीय विदयार्थियों का भी आभ्यांतरिक विकास सम्भव है। इससे निष्कर्ष यह भी निकलता है कि भारत में भारतीय ज्ञान-परंपरा की पुनर्स्थापना अपरिहार्य है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 2020 शिक्षा के भारतीय करण पर बल दे रही है।

अस्तुः हम कह सकते हैं कि जिस भारतीय ज्ञान-परंपरा-सातत्य के ध्वजा को फहराने का पुनर्प्रयास किया जा रहा है, उसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ चुका है। वैश्विक राजनीति हो या सामाजिकता, सभ्यता हो अथवा संस्कृति, कला-कौशल हो, योग हो या व्यवहार तकरीबन सबका जमीनी आधार है- भारतीय ज्ञान-परंपरा। इसलिए इसके सातत्य का वर्द्धमान रहना अपरिहार्य प्रतीत होता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा-सातत्य से ही भारतीय विदयार्थियों का आभ्यंतरिक विकास भी सम्भव है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का सातत्य बढ़े खास।(स्व-रचित)

मानवता रक्षित तब रक्षित, आत्मिक सत्य-प्रकाश।।

भविष्य में इसकी संभावनाएं :-

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

इस शोध की भविष्य में, संभावना अनंत ।(स्व-रचित)
ज्ञान पाकर भारतीय, होंगे दिल से संत ।।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का प्रभाव जब विदयार्थियों पर पड़ेगा, तभी वे सामान्य मानव से महामानव बन सकते हैं। भारतीय ज्ञान-परंपरा पशुत्व को दूर कर मनुष्य के ह्रदय में मनुष्यता का निरूपण करता है। मनुष्य का निर्माण ही भारतीय ज्ञान-परंपरा का उद्देश्य है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा-प्रकाश से वंचित मानव ही ऊँचें पद पर पहुँचकर भी भ्रष्टाचार का आधार बन जाते हैं, जिसका खामियाज आम लोगों को भोगना पड़ता है और देश भी शर्मसार होता है।

इसलिए हम कह सकते हैं कि भविष्य में इस अनुसंधान का प्रभाव सकारात्मक पड़ेगा। विदयार्थी पहले स्वयं को पढ़ेगा, तभी जीवन-यापन-पथ पर मनुष्यता के संग बढेगा। भारतीय ज्ञान-परंपरा से प्रकाशित परिवार ही संस्कारालय सिद्ध होगा। तभी समाज और देश भी संस्कारालय का स्वरूप प्राप्त कर सकेगा। इसलिए हम कह सकते हैं कि स्वर्णिम भविष्य का निर्माण भारतीय ज्ञान-परंपरा के संधान से ही हो सकता है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का, होगा जब विन्यास ।(स्व-रचित)
तभी प्राप्त विदयार्थियों को, होगा दिव्य प्रकाश ।।
(गहरे अनुसंधान एवं गम्भीर चिंतन-चन्द्र की चन्द्रिका है-यह शोधालेख ।)

संदर्भ-ग्रंथ-सूत्र

1. 'हितोपदेश' (संस्कृत)- नारायण पंडित- मूल रचनाकाल– 14 वीं शताब्दी के आसपास, प्रकाशक- चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, काशी- 2024 ई., श्लोक सं-06, पृष्ठ सं-05.
2. 'विष्णु पुराण'-पराशर ऋषि – गीताप्रेस गोरखपुर -1950 ई, पृष्ठ सं -120.
3. 'भारत-भारती' (काव्य-कृति) - मैथिली शरण गुप्त - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद -1914 ई., पृष्ठ सं-09.
4. 'संस्कृति के चार अध्याय' – रामधारी सिंह 'दिनकर' - लोकभारती, पेपर बैक्स, इलाहाबाद, पृष्ठ सं-21 (प्रस्तावना).
5. 'कल्याण' (संस्कृति विशेषांक) जयदयाल जी गोयन्दका – 1950 - गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ सं - 08.
6. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' - डॉ नगेन्द्र-नेशनल/ डॉ हरदयाल - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, - 2011 - पृष्ठ सं - 46.
7. 'रामचरितमानस' – तुलसीदास – टीकाकार - हनुमान प्रसाद पोद्दार – गीताप्रेस, गोरखपुर – संवत - 2070, पृष्ठ सं -118.
8. वही ---------- पृष्ठ सं -18.
9. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' - डॉ नगेन्द्र/डॉ हरदयाल - पृष्ठ सं -115.
10. वही ---------- पृष्ठ सं -222.
11. 'संसद से सड़क तक' – सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – 2013 - पृष्ठ सं - 99.
12. 'मिथिला संस्कृति एवं परंपरा' - सम्पादक त्रय - जानकी प्रकाशन, पटना, 2001, पृष्ठ सं - 65

The Asian Thinker